सन्मति-विद्या प्रकाश-माला

प्रथम प्रकाश

अनेकान्त-रस-लहरी

लेखक

जुगल[illegible]कशोर मुख्[illegible] 'युगवीर'

अधिष्ठाता 'वी[illegible]न्दिर'

सरसावा [illegible]नपुर

—:०:—

प्रकाशक

वीर-सेवा-मन्दिर

सरसावा जि० सहारनपुर

प्रथम संस्करण २००० | माघ, संवत् २००६ जनवरी, १९५० | मूल्य चार आने

सेवामन्दिर' सर-
और विद्यावती-
हुए ऋणसे उऋण
ानिधि' के रूपमें
रके सुपुर्द करते
ापना की थी और
-जिनेन्द्रकी विद्या-
चारको—लक्ष्यमें
हित्यका प्रकाशन
किया जाय। उसी निधिसे जिसे, बादको श्रीमती कमलाबाईजी धर्मपत्नी श्रीमान बाबू नन्दलालजी कलकत्ताने १००)रु० की भेंट की है, यह सरल सुबोध सुन्दर पुस्तक प्रकाशित की जा रही है। इसके अधिक प्रचारपर अधिक लोक-हितकी आशा की जाती है। साथ ही, यह भी आशा की जाती है कि हिन्दी भाषाको अपनाने वाली देशकी प्रायः सभी विद्या-संस्थाओंमें इस पुस्तकको किसी-न-किसी रूपमें जरूर प्रश्रय प्राप्त होगा।

—प्रकाशक

अकलंक प्रेस, सदर बाजार, देहली।

प्रास्ताविक

अहिंसाके साथ जिस सत्यको विशेष महत्व प्राप्त है, जिसे अपनाने और जीवनमें उतारनेकी सर्वत्र दुहाई दी जाती है, बड़े बड़े धर्माचार्य और देशनेतादिक जिसका बराबर उपदेश करते हुए पाये जाते हैं और जिसपर विश्वको प्रतिष्ठित बतलाया जाता है वह सत्य क्या है और उसे वास्तवमें कितने लोग जानते पहचानते अथवा अनुभव करते हैं, यह एक बड़ी ही विकट समस्या है। यहाँ इसके विशेष विचार अथवा ऊहापोहका अवसर नहीं है; इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि सत्यका जितना अधिक महत्व है उतना ही कम लोगोंको उसका परिचय अथवा अनुभव है, बहुधा धर्माचार्य और देशनेता तक उसे ठीक पहचानते नहीं और यों ही रूढिवश अथवा अपना गौरव ख्यापित करनेके लिये उसका उपदेश कर जाते हैं। इसीसे जनताको सत्यके पहचाननेकी कसौटी नहीं मिल पाती और न सत्य उसके द्वारा वस्तुतः अपनाया अथवा जीवनमें उतारा ही जाता है। अहिंसाको भी इसीसे उसके ठीक रूपमें पहचाना नहीं जाता और नतीजा इस सबका यह हो रहा है कि संसारमें व्यर्थ वैर-विरोध एवं संघर्षकी सृष्टि होती चली जाती है और विश्वकी शान्ति बराबर भंग होकर अशान्ति बढ़ रही है।

जिस सत्यपर सारा विश्व प्रतिष्ठित है और जो विश्वके अंग-अंगमें—उसकी प्रत्येक वस्तुमें—ओत-प्रोत है वह सत्य अनेकान्तात्मक है—सर्वथा एकान्तात्मक अथवा एक ही गुण-धर्मरूप नहीं है। अनेकान्त जिसका आत्मा हो उसे जानने–पहचाननेके लिये अनेकान्तको जानना और समझना कितना आवश्यक है इसे बतलानेकी जरूरत नहीं। वस्तुतः अनेकान्तका रहस्य समझे विना सत्यको जाना और पहचाना ही नहीं जा सकता और सत्यको जाने–पहचाने विना उसे ठीक तौरपर व्यवहारमें नहीं लाया जा सकता और न जीवनमें उतारा ही जा सकता है।

अनेकान्तका रहस्य बड़ा गूढ गंभीर और जटिल है। स्वामी समन्तभद्र जैसे विज्ञ महामना एवं समुदार महर्षियोंने अनेक दार्शनिक तत्त्वों और सिद्धान्तोंका विवेचन करते हुए उस रहस्यका भले प्रकार उद्घाटन अपने देवागमादि महान् संस्कृत ग्रन्थोंमें किया है, जो सर्वसाधारणकी पहुंचके परे तथा बहुत कुछ दुर्बोध हैं। उन्हीं ग्रन्थोंके अध्ययनके फलस्वरूप बहुत अर्सेसे मेरा विचार था कि अनेकान्त-जैसे गंभीर विषयको ऐसे मनोरंजक ढंगसे सरल शब्दोंमें समझाया जाय जिससे बच्चे तक भी उसके मर्मको आसानीसे समझ सकें, वह कठिन दुर्बोध एवं नीरस विषय न रहकर सुगम सुखबोध तथा रसीला विषय बन जाय—बातकी बातमें समझा जा सके—और जनसाधारण सहजमें ही उसका रसास्वादन करते हुए उसे हृदयङ्गम करने, अपनाने और उसके आधारपर तत्त्वज्ञानमें प्रगति करने, प्राप्तज्ञानमें समीचीनता लाने, विरोधको मिटाने तथा लोकव्यवहारमें सुधार करनेके साथ साथ अनेकान्तको जीवनका प्रधान अङ्ग बनाकर सुख-शान्तिका अनुभव करनेमें समर्थ हो सकें। उसी विचारके फलस्वरूप यह 'अनेकान्त रस-लहरी' नामकी प्रथम पुस्तक लिखी गई है, जो चार पाठोंमें विभक्त है। प्रथम दो पाठोंमें अनेकान्तका सूत्र निर्दिष्ट है—उसके रहस्यको खोलनेकी कुंजी अथवा सत्यको परखनेकी कसौटी संनिहित है। शेष दो पाठोंमें उसके व्यवहारशास्त्रका कुछ दिग्दर्शन कराया गया है और उसके द्वारा अनेकान्त-तत्त्व-विषयक समझको विस्तृत, परिपुष्ट तथा विकासोन्मुख किया गया है। आशा है इससे लोकका हित सधेगा और विद्यार्थीगण विशेष उपकृत होंगे, जिन्हें लक्ष्यमें लेकर ही अन्तमें चारों पाठोंकी उपयोगी प्रश्नावली संयोजित की गई है।

देहली, २८ जनवरी १६५० जुगलकिशोर मुख्तार

अनेकान्त-रस-लहरी

[१]

छोटापन और बड़ापन

एक दिन अध्यापक वीरभद्रने, अपने विद्यार्थियोंको नया पाठ पढ़ानेके लिये, बोर्डपर तीन-इंचकी एक लाइन खींचकर विद्यार्थीसे पूछा—

'बतलाओ यह लाइन छोटी है या बड़ी ?'

विद्यार्थीने चटसे उत्तर दिया—'यह तो छोटीहै।'

इसपर अध्यापकने उस लाइनके नीचे एक-इंचकी दूसरी लाइन बनाकर फिरसे पूछा— १

'अब ठीक देखकर बतलाओ कि २

ऊपरकी लाइन नं० १ बड़ी है या छोटी ?'

विद्यार्थी देखते ही बोल उठा—'यह तो साफ़ बड़ी नज़र आती है।'

अध्यापक—अभी तुमने इसे छोटी बतलाया था ?

विद्यार्थी—हाँ, बतलाया था, वह मेरी भूल थी।

इसके बाद अध्यापकने, प्रथम लाइनके ऊपर पाँच-इंचकी लाइन बनाकर और नीचे वाली एक-इंची लाइनको मिटाकर, फिरसे पूछा— ३

'अच्छा, अब बतलाओ, १
नीचेकी लाइन नं० १ छोटी है या बड़ी ?'

विद्यार्थी कुछ असमंजसमें पड़ गया और आखिर तुरन्त ही कह उठा—'यह तो अब छोटी हो गई है।'

'छोटी कैसे हो गई ? क्या किसीने इसमेंसे कोई टुकड़ा तोड़ा है या इसके किसी अंशको मिटाया है ?—हमने तो इसे छुआ तक भी नहीं। अथवा तुमने इसे जो पहले 'बड़ी' कहा था वह कहना भी तुम्हारा गलत था ?' अध्यापकने पूछा।

'पहले जो मैंने इसे 'बड़ी' कहा था वह कहना मेरा गलत नहीं था और न उस लाइनमेंसे किसीने कोई टुकड़ा तोड़ा है या उसके किसी अंशको मिटाया है—वह तो ज्योंकी त्यों अपने तीन-इंचीके रूपमें स्थित है। पहले आपने इसके नीचे एक-इंचकी लाइन बनाई थी, इससे यह बड़ी नजर आती थी और इसी लिये मैंने इसे बड़ी कहा था; अब आपने उस एक-इंचकी लाइनको मिटाकर इसके ऊपर पाँच-इंचकी लाइन बना दी है, इससे यह तीन-इंचकी लाइन छोटी हो पड़ी—छोटी नजर आने लगी, और इसी से मुझे कहना पड़ा कि 'यह तो अब छोटी हो गई है।' विद्यार्थीने उत्तर दिया।

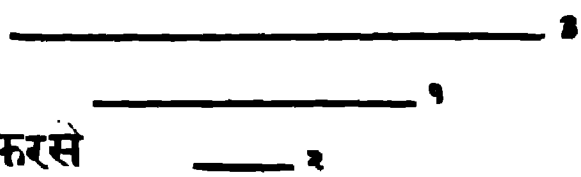
अध्यापक—अच्छा, सबसे पहिले तुमने इस तीन-इंची लाइनको जो छोटी कहा था उसका क्या कारण था ?

विद्यार्थी—उस समय मैंने यह देखकर कि बोर्ड बहुत बड़ा

है और यह लाइन उसके एक बहुत छोटेसे हिस्सेमें आई है, इसे 'छोटी' कह दिया था।

अध्यापक—फिर इसमें तुम्हारी भूल क्या हुई ? यह तो ठीक ही है—यह लाइन बोर्डसे छोटी है, इतना ही क्यों ? यह तो टेबिलसे भी छोटी है, कुर्सीसे भी छोटी है, इस कमरेके किवाड़से भी छोटी है, दीवारसे भी छोटी है, और तुम्हारी-मेरी लम्बाईसे भी छोटी है।

विद्यार्थी—इस तरह तो मेरे कहनेमें भूल नहीं थी—भूल मान लेना ही भूल थी।



अब अध्यापक ने उस मिटाई हुई एक-इंची लाइनको फिरसे नीचे बना दिया और सवाल किया कि—

'तीनों लाइनोंकी इस स्थितिमें तुम बीचकी उसी नम्बर १ वाली लाइनको छोटी कहोगे या बड़ी ?'

विद्यार्थी—मैं तो अब यूँ कहूँगा कि यह ऊपरवाली लाइन नं० ३ से छोटी और नीचेवाली लाइन नं० २ से बड़ी है।

अध्यापक—अर्थात् इसमें छोटापन और बड़ापन दोनों हैं और दोनों गुण एक साथ हैं ?

विद्यार्थी—हाँ, इसमें दोनों गुण एक साथ हैं।

अध्यापक—एक ही चीजको छोटी और बड़ी कहनेमें क्या तुम्हें कुछ विरोध मालूम नहीं होता ? जो वस्तु छोटी है वह बड़ी नहीं कहलाती और जो बड़ी है वह छोटी नहीं कही जाती। एक ही वस्तुको 'छोटी' कहकर फिर यह कहना कि 'छोटी नहीं—बड़ी' है, यह कथन तो लोक-व्यवहारमें विरुद्ध जान पड़ेगा। लोकव्यवहारमें जिस प्रकार 'हाँ' कहकर 'ना' कहना

अथवा विधान करके निषेध करना परस्पर विरुद्ध, असंगत और अप्रामाणिक समझा जाता है उसी प्रकार तुम्हारा यह एक चीज़को छोटी कहकर बड़ी कहना अथवा एक ही वस्तुमें छोटेपनका विधान करके फिर उसका निषेध कर डालना—उसे बड़ी बतलाने लगना—क्या परस्पर विरुद्ध, असंगत और अप्रामाणिक नहीं समझा जायगा ? और जिस प्रकार अन्धकार तथा प्रकाश दोनों एक साथ नहीं रहते उसी प्रकार छोटापन और बड़ापन दोनों गुणों (धर्मों) के एक साथ रहनेमें क्या विरोध नहीं आएगा ?

यह सब सुनकर विद्यार्थी कुछ सोच-सोमें पड़ गया और मन-ही-मन उत्तरकी खोज करने लगा; इतनेमें अध्यापकजी उसकी विचार-समाधिको भंग करते हुए बोल उठे—

'इसमें अधिक सोचने-विचारनेकी बात क्या है ? एक ही चीज़को छोटी-बड़ी दोनों कहनेमें विरोध तो तब आता है जब जिस दृष्टि अथवा अपेक्षासे किसी चीज़को छोटा कहा जाय उसी दृष्टि अथवा अपेक्षासे उसे बड़ा बतलाया जाय। तुमने मध्यकी तीन-इंची लाइनको ऊपरकी पाँच-इंची लाइनसे छोटी बतलाया है, यदि पाँच-इंचवाली लाइनकी अपेक्षा ही उसे बड़ी बतला देते तो विरोध आजाता, परन्तु तुमने ऐसा न करके उसे नीचेकी एक इंच-वाली लाइनसे ही बड़ा बतलाया है, फिर विरोधका क्या काम ? विरोध वहीं आता है जहाँ एक ही दृष्टि (अपेक्षा) को लेकर विभिन्न प्रकारके कथन किए जायँ, जहाँ विभिन्न प्रकारके कथनोंके लिये विभिन्न दृष्टियों-अपेक्षाओंका आश्रय लिया जाय वहाँ विरोधके लिये कोई अवकाश नहीं रहता। एक ही मनुष्य अपने पिताकी दृष्टिसे पुत्र है और अपने पुत्रकी दृष्टिसे पिता है—उसमें पुत्रपन और पितापनके

दोनों धर्म एक साथ रहते हुए भी जिस प्रकार दृष्टिभेद होनेसे विरोधको प्राप्त नहीं होते उसी प्रकार एक दृष्टिसे किसी वस्तुका विधान करने और दूसरी दृष्टिसे निषेध करने अथवा एक अपेक्षासे 'हाँ' और दूसरी अपेक्षासे 'ना' करनेमें भी विरोधकी कोई बात नहीं है। ऐसे ऊपरी अथवा शब्दोंमें ही दिखाई पड़ने वाले विरोधको 'विरोधाभास' कहते हैं—वह वास्तविक अथवा अर्थकी दृष्टिसे विरोध नहीं होता; और इस लिये पूर्वापरविरोध तथा प्रकाश-अन्धकार-जैसे विरोधके साथ उसकी कोई तुलना नहीं की जासकती। और इसी लिये तुमने जो बात कही वह ठीक है। तुम्हारे कथनमें दृढता लानेके लिए ही मुझे यह सब स्पष्टीकरण करना पड़ा है। आशा है अब तुम छोटे-बड़ेके तत्त्वको खूब समझ गये होगे।

विद्यार्थी—हाँ, खूब समझ गया, अब नहीं भूलूँगा।

अध्यापक—अच्छा, तो इतना और बतलाओ—'इन ऊपर-नीचेकी दोनों बड़ी-छोटी लाइनोंको यदि मिटा दिया जाय और मध्यकी उस नं० १ वाली लाइनको ही स्वतन्त्र रूपमें स्थिर रक्खा जाय—दूसरी किसी भी बड़ी-छोटी चीज़के साथ उसकी तुलना या अपेक्षा न की जाय, तो ऐसी हालतमें तुम इस लाइन नं० १ को स्वतन्त्र-भावसे—कोई भी अपेक्षा अथवा दृष्टि साथमें न लगाते हुए—छोटी कहोगे या बड़ी ?'

विद्यार्थी—ऐसी हालतमें तो मैं इसे न छोटी कह सकता हूँ और न बड़ी।

अध्यापक—अभी तुमने कहा था 'इसमें दोनों (छोटापन और बड़ापन) गुण एक साथ हैं' फिर तुम इसे छोटी या बड़ी क्यों नहीं कह सकते ? दोनों गुणोंको एक साथ कहनेकी वचनमें शक्ति न होनेसे यदि युगपत् नहीं कह सकते तो क्रमसे

तो कह सकते हो ? वे दोनों गुण कहीं चले तो नहीं गये ? गुणोंका तो अभाव नहीं हुआ करता—भले ही तिरोभाव (आच्छादन) हो जाय, कुछ समयके लिये उनपर पर्दा पड़ जाय और वे स्पष्ट दिखलाई न पड़ें।

विद्यार्थी फिर कुछ रुका और सोचने लगा! अन्तको उसे यही कहते हुए बन पड़ा कि—'बिना अपेक्षाके किसीको छोटा या बड़ा कैसे कहा जासकता है ? पहले जो मैंने इस लाइनको 'छोटी' तथा 'बड़ी' कहा था वह अपेक्षासे ही कहा था, अब आप अपेक्षाको बिल्कुल ही अलग करके पूछ रहे हैं तब मैं इसे छोटी या बड़ी कैसे कह सकता हूँ, यह मेरी कुछ भी समझमें नहीं आता! आप ही समझाकर बतलाइये।'

अध्यापक—तुम्हारा यह कहना बिल्कुल ठीक है कि 'बिना अपेक्षाके किसीको छोटा या बड़ा कैसे कहा जासकता है ? अर्थात् नहीं कहा जासकता। अपेक्षा ही छोटापन या बड़ेपनका मापदण्ड है—मापनेका गज़ है ? जिस अपेक्षा-गज़से किसी वस्तुविशेषको मापा जाता है वह गज़ यदि उस वस्तुके एक अंशमें आजाता है—उसमें समा जाता है—तो वह वस्तु 'बड़ी' कहलाती है। और यदि उस वस्तुसे बढ़ा रहता—बाहरको निकला रहता है—तो वह 'छोटी' कही जाती है। वास्तवमें कोई भी वस्तु स्वतन्त्ररूपसे अथवा स्वभावसे छोटी या बड़ी नहीं है—स्वतन्त्ररूपसे अथवा स्वभावसे छोटी या बड़ी होने पर वह सदा छोटी या बड़ी रहेगी; क्योंकि स्वभावका कभी अभाव नहीं होता। और इसलिये किसी भी वस्तुमें छोटापन और बड़ापन ये दोनों गुण परतन्त्र, पराश्रित, परिकल्पित, आरोपित, सापेक्ष अथवा परापेक्षिक ही होते हैं, स्वाभाविक नहीं। छोटेके अस्तित्व-बिना बड़ापन और बड़ेके अस्तित्व-बिना छोटापन कहीं होता ही नहीं। एक अपेक्षासे जो वस्तु

छोटी है वही दूसरी अपेक्षासे बड़ी है और जो एक अपेक्षासे बड़ी है वही दूसरी अपेक्षासे छोटी है। इसी लिये कोई भी वस्तु सर्वथा (विना अपेक्षाके) छोटी या बड़ी न तो होती है और न कही जा सकती है। किसीको सर्वथा छोटा या बड़ा कहना 'एकान्त' है। एक दृष्टिसे छोटा और दूसरी दृष्टिसे बड़ा कहना 'अनेकान्त' है। जो मनुष्य किसीको सर्वथा छोटा या बड़ा कहता है वह उसको सब ओरसे अवलोकन नहीं करता—उसके सब पहलुओं अथवा अंगोंपर दृष्टि नहीं डालता—न सब ओरसे उसकी तुलना ही करता है, सिक्केकी एक साइड (side) को देखनेकी तरह वह उसे एक ही ओरसे देखता है और इस लिये पूरा देख नहीं पाता। इसीसे उसकी दृष्टिको 'सम्यक् दृष्टि' नहीं कह सकते और न उसके कथनको 'सच्चा कथन' ही कहा जासकता है। जो मनुष्य वस्तुको सब ओरसे देखता है, उसके सब पहलुओं अथवा अंगोंपर दृष्टि डालता है और सब ओरसे उसकी तुलना करता है वह 'अनेकान्तदृष्टि' है—'सम्यक् दृष्टि' है। ऐसा मनुष्य यदि किसी वस्तुको छोटी कहना चाहता है तो कहता है— 'एक प्रकारसे छोटी है,' 'अमुककी अपेक्षा छोटी है', 'कथंचित छोटी है' अथवा 'स्यात छोटी' है। और यदि छोटी-बड़ी दोनों कहना चाहता है तो कहता है— 'छोटी भी है और बड़ी भी, एक प्रकारसे छोटी है–दूसरे प्रकार से बड़ी है, अमुककी अपेक्षा छोटी और अमुककी अपेक्षा बड़ी है अथवा कथंचित् छोटी और बड़ी दोनों है।' और उसका यह वचन-व्यवहार एकान्त-कदाग्रहकी ओर न जाकर वस्तुका ठीक प्रतिपादन करनेके कारण 'सच्चा' कहा जाता है। मैं समझता हूँ अब तुम इस विषयको और अच्छी तरहसे समझ गये होगे।

विद्यार्थी—(पूर्ण सन्तोष व्यक्त करते हुए) हाँ, बहुत अच्छी

तरहसे समझ गया हूँ। पहले समझनेमें जो कचाई रह गई थी वह भी अब आपकी इस व्याख्यासे दूर हो गई है। आपने मेरा बहुत कुछ अज्ञान दूर किया है, और इस लिये मैं आपके आगे नत-मस्तक हूँ।

अध्यापक वीरभद्रजी अभी इस विषयपर और भी कुछ प्रकाश डालना चाहते थे कि इतनेमें घंटा बज गया और उन्हें दूसरी कक्षामें जाना पड़ा।

---

[२]

बड़ेसे छोटा और छोटेसे बड़ा

अध्यापक वीरभद्रने दूसरी कक्षामें पहुँच कर उस कक्षाके विद्यार्थियोंको भी वही नया पाठ पढ़ाना चाहा जिसे वे अभी अभी इससे पूर्वकी एक कक्षामें पढ़ाकर आये थे; परन्तु यहां उन्होंने पढ़ानेका कुछ दूसरा ही ढंग अख्तियार किया। वे बोर्ड-पर तीन-इंचकी लाइन खींच कर एक विद्यार्थीसे बोले—'क्या तुम इस लाइनको छोटा कर सकते हो ?' ————————

विद्यार्थीने उत्तर दिया—'हाँ, कर सकता हूँ' और वह उस लाइनको इधर-उधरसे कुछ मिटानेकी चेष्टा करने लगा।

यह देख कर अध्यापक महोदयने कहा— 'हमारा यह मतलब नहीं है कि तुम इस लाइनके सिरोंको इधर-उधरसे मिटा कर अथवा इसमेंसे कोई टुकडा तोड़ कर इसे छोटी करो। हमारा आशय यह है कि यह लाइन अपने स्वरूपमें ज्यों-की त्यों स्थिर रहे, इसे तुम छूओ भी नहीं और छोटी कर दो।

यह सुन कर विद्यार्थी कुछ भौंचक-सा रह गया ! तब अध्यापकने कहा—'अच्छा, तुम इसे छोटा नहीं कर सकते तो क्या बिना छुए बड़ा कर सकते हो ?

विद्यार्थीने कहा— हाँ, कर सकता हूं, और यह कह कर उसने दो-इंचकी एक लाइन उस लाइनके बिल्कुल सीधमें उसके एक सिरेसे सटा कर बनादो और इस तरह उसे पांच इंचकी लाइन कर दिया । ——————————

इस पर अध्यापक महोदय बोल उठे—

'यह क्या किया ? हमारा अभिप्राय यह नहीं था कि तुम इसमें कुछ टुकड़ा जोड़कर इसे बड़ी बनाओ, हमारी मन्शा यह है कि इसमें कुछ भी जोड़ा न जाय, लाइन अपने तीन-इंचके स्वरूपमें ही स्थिर रहे—पांच-इंची-जैसी न होने पावे—और बिना छुए ही बड़ी कर दी जाय ।'

विद्यार्थी—यह कैसे हो सकता है ? ऐसा तो कोई जादूगर ही कर सकता है ।

अध्यापक—(दूसरे विद्यार्थियोंसे) अच्छा, तुम्हारेमेंसे कोई विद्यार्थी इस लाइनको हमारे अभिप्रायानुसार छोटा या बड़ा कर सकता है ?

सब विद्यार्थी—हमसे यह नहीं हो सकता । इसे तो कोई जादूगर या मंत्रवादी ही कर सकता है ।

अध्यापक—जब जादूगर या मंत्रवादी इसे बड़ा-छोटा कर सकता है और यह बड़ी-छोटी हो सकती है तब तुम क्यों नहीं कर सकते ?

विद्यार्थी—हमें बड़ेसे छोटा और छोटेसे बड़ा करनेका वह जादू या मंत्र आता नहीं ।

'अच्छा, हमें तो वह जादू करना आता है। बतलाओ इस लाइनको पहले छोटी करें या बड़ी ?' अध्यापकने पूछा।

'जैसी आपकी इच्छा, परन्तु आप भी इसे छूएँ नहीं और इसे अपने स्वरूपमें स्थिर रखते हुए छोटी तथा बड़ी करके बतलाएँ;' विद्यार्थियोंने उत्तरमें कहा।

'ऐसा ही होगा' कह कर, अध्यापकजीने विद्यार्थीसे कहा— 'तुम इसके दोनों ओर मार्क कर दो—पहचानकाकोई चिन्ह बना दो, जिससे इसमें कोई तोड़-जोड़ या बदल-सदल न हो सके और यदि हो तो उसका शीघ्र पता चल जाय।' विद्यार्थीने दोनों ओर दो फूलकेसे चिन्ह बना दिये। फिर अध्यापकजीने कहा 'फुटा रख कर इसकी पैमाइश भी करलो और वह इसके ऊपर लिख दो।' विद्यार्थीने फुटा रख कर पैमाइश की तो लाइन ठीक तीन इंचकी निकली और वही लाइनके ऊपर लिख दिया गया।

३ इंच
————————

इसके बाद अध्यापकजीने बोर्ड-पर एक ओर कपड़ा डालकर कहा—

'अब हम पहले इस लाइनको छोटी बनाते हैं और छोटी होनेका मंत्र बोलते हैं।' साथ ही, कपड़ेको एक ओरसे उठा कर 'होजा छोटी, होजा छोटी !' का मंत्र बोलते हुए वे बोर्डपर कुछ बनानेको ही थे कि इतनेमें विद्यार्थी बोल उठे—

'आप तो पर्देकी ओटमें लाइनको छूते हैं। पर्देको हटा कर सबके सामने इसे छोटा कीजिये।'

अध्यापकजीने बोर्ड पर डाला हुआ कपड़ा हटाकर कहा—

'अच्छा, अब हम इसे खुले आम छोटा किये देते हैं और किसी मंत्रका भी कोई सहारा नहीं लेते। यह कह कर उन्होंने उस

तीन-इंची लाइनके ऊपर पांच-इंचकी लाइन बना दी और विद्यार्थियोंसे पूछा—

५ इंच

३ इंच

'कहो, तुम्हारी मार्क की हुई नीचेकी लाइन ऊपरकी लाइनसे छोटी है या कि नहीं ? और बिना किसी अंशके मिटाए या तोड़े अपने तीन इंचके स्वरूपमें स्थिर रहते हुए भी छोटी हो गई है या कि नहीं ?'

सब विद्यार्थी—हाँ हो गई है। यह रहस्यकी बात पहले हमारे ध्यानमें ही नहीं आई थी कि, इस तरह भी बड़ीसे छोटी और छोटीसे बड़ी चीज हुआ करती है। अब तो आप नीचे छोटी लाइन बना कर इसे बड़ी भी कर देंगे।

अध्यापकजीने तुरन्त ही नीचे एक-इंचकी लाइन बना कर उसे साक्षात् बड़ा करके बतला दिया।

५ इंच

३ इंच

१ इंच

अब अध्यापक वीरभद्रने फिर उसी विद्यार्थीसे पूछा—

'तीनों लाइनोंकी इस स्थितिमें तुम अपनी मार्क की हुई उस बीचकी लाइनको, जो बड़ीसे छोटी और छोटीसे बड़ी हुई है, क्या कहोगे—छोटी या बड़ी ?'

विद्यार्थी—यह छोटी भी है और बड़ी भी।

अध्यापक—दोनों एक साथ कैसे ?

विद्यार्थी—ऊपरकी लाइनसे छोटी और नीचेकी लाइनसे

बड़ी है अर्थात् स्वयं तीन-इंची होनेसे पांच-इंची लाइनकी अपेक्षा छोटी और एक-इंची लाइनकी अपेक्षा बड़ी है। और यह छोटापन तथा बड़ापन दोनों गुण इसमें एक साथ प्रत्यक्ष होनेसे इनमें परस्पर विरोध तथा असंगति-जैसी भी कोई बात नहीं है।

अध्यापक—अगर कोई विद्यार्थी इस बीचकी लाइनको एकबार ऊपरकी लाइनसे छोटी और दूसरी बार ऊपरकी लाइन-से ही बड़ी बतलावे, और इस तरह इसमें छोटापन तथा बड़ा-पन दोनोंका विधान करे तब भी विरोधकी क्या कोई बात नहीं है?

विद्यार्थी—इसमें जरूर विरोध आएगा। एक तो उसके कथनमें पूर्वापर-विरोध आएगा; क्योंकि पहले उसने जिसको जिससे छोटी कहा था उसीको फिर उससे बड़ी बतलाने लगा। दूसरे, उसका कथन प्रत्यक्षके भी विरुद्ध ठहरेगा; क्योंकि ऊपरकी लाइन नीचेकी लाइनसे साक्षात् बड़ी नजर आती है, उसे छोटी बतलाना दृष्ट-विरुद्ध है।

अध्यापक—यह क्या बात है कि तुम्हारे बड़ी-छोटी बतलाने-में तो विरोध नहीं और दूसरेके बड़ी-छोटी बतलानेमें विरोध आता है?

विद्यार्थी—मैंने एक अपेक्षासे छोटी और दूसरी अपेक्षासे बड़ी बतलाया है। इस तरह अपेक्षाभेदको लेकर भिन्न कथन करनेमें विरोधके लिये कोई गुँजाइश नहीं रहती। दूसरा जिसे एक अपेक्षासे छोटी बतलाता है उसीकी अपेक्षासे उसे बड़ी बतलाता है, इस लिये अपेक्षाभेद न होनेके कारण उसका भिन्न कथन विरोधसे रहित नहीं हो सकता—वह स्पष्टतया विरोध-दोषसे दूषित है।

अध्यापक—तुम ठीक समझ गये। अच्छा अब इतना और

बतलाओ कि तुम्हारी इस मार्क की हुई बीचकी लाइनको एक विद्यार्थी 'छोटी ही है', ऐसा बतलाता है और दूसरा विद्यार्थी कहता है कि 'बड़ी ही है' तुम इन दोनों कथनोंको क्या कहोगे ? तुम्हारे विचारसे इनमेंसे कौनसा कथन ठीक है और क्योंकर ?

विद्यार्थी—दोनों ही ठीक नहीं हैं। मेरे विचारसे जो 'छोटी ही' (सर्वथा छोटी) बतलाता है उसने नीचेकी एकइंची लाइनको देखा नहीं, और जो 'बड़ी ही' (सर्वथा बड़ी) बतलाता है उसने ऊपरकी पांच-इंची लाइन पर दृष्टि नहीं डाली। दोनोंकी दृष्टि एक तरफ़ा होनेसे एकाङ्गी है, एकान्त है, सिक्के अथवा ढालकी एक ही साइड (side) को देखकर उसके स्वरूपका निर्णय करलेने-जैसी है, और इसलिये सम्यग्दृष्टि न होकर मिथ्यादृष्टि है जो अनेकान्तदृष्टि होती है वह वस्तुको सब ओरसे देखती है—उसके सब पहलुओंपर नज़र डालती है—इसीलिये उसका निर्णय ठीक होता है और वह 'सम्यग्दृष्टि' कहलाती है। यदि उन्होंने ऊपर-नीचे दृष्टि डालकर भी वैसा कहा है तो कहना चाहिये कि वह उनका कदाग्रह है—हठधर्मी है; क्योंकि ऊपर-नीचे देखते हुए मध्यको लाइन सर्वथा छोटी या सर्वथा बड़ी प्रतीत नहीं होती और न स्वरूपसे कोई वस्तु सर्वथा छोटी या सर्वथा बड़ी हुआ करती है।

अध्यापक—मानलो, तुम्हारे इस दोष देनेसे बचनेके लिये एक तीसरा विद्यार्थी दोनों एकान्तोंको अपनाता है—'छोटी ही है और बड़ी भी है' ऐसा स्वीकार करता है; परन्तु तुम्हारी तरह अपेक्षावादको नहीं मानता। उसे तुम क्या कहोगे ?

विद्यार्थी थोड़ा सोचने लगा, इतनेमें अध्यापकजी विषयको स्पष्ट करते हुए बोल उठे—

'इसमें सोचनेकी क्या बात है? उसका कथन भी विरोध-दोषसे दूषित है; क्योंकि जो अपेक्षावाद अथवा स्याद्वाद-न्यायको नहीं मानता उसका उभय-एकान्तको लिये हुए कथन विरोध-दोषसे रहित हो ही नहीं सकता—अपेक्षावाद अथवा 'स्यात्' शब्द या स्यात् शब्दके आशयको लिये हुए 'कथंचित्' (एक प्रकारसे) जैसे शब्दोंका साथमें प्रयोग ही कथनके विरोध-दोषको मिटाने वाला है। 'कोई भी वस्तु सर्वथा छोटी या बड़ी नहीं हुआ करती' यह बात तुम अभी स्वयं स्वीकार कर चुके हो और वह ठीक है; क्योंकि कोई भी वस्तु स्वतंत्ररूपसे अथवा स्वभावसे सर्वथा छोटी या बड़ी नहीं है—किसी भी वस्तुमें छोटेपन या बड़ेपनका व्यवहार दूसरेके आश्रय अथवा पर-निमित्तसे ही होता है और इसलिये उस आश्रय अथवा निमित्तकी अपेक्षाके विना वह नहीं बन सकता। अतः अपेक्षासे उपेक्षा धारण करने वालोंके ऐसे कथनमें सदा ही विरोध बना रहता है। वे 'ही' की जगह 'भी' का भी प्रयोग करदें तो कोई अन्तर नहीं पड़ता। प्रत्युत इसके, जो स्याद्वादन्यायके अनुयायी हैं—एक अपेक्षासे छोटा और दूसरी अपेक्षासे बड़ा मानते हैं—वे साथमें यदि 'ही' शब्दका भी प्रयोग करते हैं तो उससे कोई बाधा नहीं आती—विरोधको ज़रा भी अवकाश नहीं मिलता; जैसे 'तीन-इंची लाइन पांच-इंची लाइनकी अपेक्षा छोटी ही है और एक-इंची लाइनकी अपेक्षा बड़ी ही है' इस कहनेमें विरोधकी कोई बात नहीं है। विरोध वहीं आता है जहां छोटापन और बड़ापन जैसे सापेक्ष धर्मों अथवा गुणोंको निरपेक्षरूपसे कथन किया जाता है। मैं समझता हूँ अब तुम इस विरोध-अविरोधके तत्वको भी अच्छी तरहसे समझ गये होगे?'

विद्यार्थी—हाँ, आपने खूब समझा दिया है और मैं अच्छी

तरह समझ गया हूँ।

अध्यापक—अच्छा, अब मैं एक बात और पूछता हूँ—कल तुम्हारी कक्षामें जिनदास नामके एक स्याद्वादी—स्याद्वादन्यायके अनुयायी—आए थे और उन्होंने मोहन लड़केको देखकर तथा उसके विषयमें कुछ पूछ-ताछ करके कहा था 'यह तो छोटा है'। उन्होंने यह नहीं कहा कि 'यह छोटा ही है' यह भी नहीं कहा कि वह 'सर्वथा छोटा है' और न यही कहा कि यह 'अमुककी अपेक्षा अथवा अमुक-विषयमें छोटा है,' तो बतलाओ उनके इस कथनमें क्या कोई दोष आता है? और यदि नहीं आता तो क्यों नहीं?

इस प्रश्नको सुन कर विद्यार्थी कुछ चक्करमें पड़ गया और मन-ही-मन उत्तरकी खोज करने लगा। जब उसे कई मिनट होगये तो अध्यापकजी बोल उठे—

'तुम तो बड़ी सोचमें पड़ गये! इस प्रश्न पर इतने सोच-विचारका क्या काम? यह तो स्पष्ट ही है कि जिनदासजी स्याद्वादी हैं, उन्होंने स्वतंत्ररूपसे 'ही' तथा 'सर्वथा' शब्दोंका साथमें प्रयोग भी नहीं किया है, और इसलिये उनका कथन प्रकट रूपमें 'स्यात्' शब्दके प्रयोगको साथमें न लेते हुए भी 'स्यात्' शब्दसे अनुशासित है—किसी अपेक्षा विशेषको लिये हुए है। किसीसे किसी प्रकारका छोटापन उन्हें विवक्षित था, इसीसे यह जानते हुए भी कि मोहन अनेकोंसे अनेक विषयोंमें 'बड़ा' है, उन्होंने अपने विवक्षित अर्थके अनुसार उसे उस समय 'छोटा' कहा है। इस कथनमें दोषकी कोई बात नहीं है। तुम्हारे हृदयमें शायद यह प्रश्न उठ रहा है कि जब मोहनमें छोटापन और बड़ापन दोनों थे तब जिनदासजी-ने उसे छोटा क्यों कहा, बड़ा क्यों नहीं कह दिया? इसका

उत्तर इतना ही है कि—मोहन उम्रमें, क़दमें, रूपमें, बलमें, विद्यामें, चतुराईमें और आचार-विचारमें बहुतोंसे छोटा है और बहुतोंसे बड़ा है। जिनदासजीको जिसके साथ जिस विषय अथवा जिन विषयोंमें उसकी तुलना करनी थी उस तुलनामें वह छोटा पाया गया, और इस लिये उन्हें उस समय उसको छोटा कहना ही विवक्षित था, वही उन्होंने उसके विषयमें कहा। जो जिस समय विवक्षित होता है वह 'मुख्य' कहलाता है और जो विवक्षित नहीं होता वह 'गौण' कहा जाता है। मुख्य-गौणकी इस व्यवस्थासे ही वचन-व्यवहारकी ठीक व्यवस्था बनती है। अतः जिनदासजीके उक्त कथनमें दोषापत्तिके लिये कोई स्थान नहीं है। अनेकान्तके प्रतिपादक स्याद्वादियोंका 'स्यात्' पदका आश्रय तो उनके कथनमें अतिप्रसंग-जैसा गड़बड़-घुटाला भी नहीं होने देता। बहुतसे छोटेपनों और बहुतसे बड़ेपनोंमें जो जिस समय कहने वालेको विवक्षित होता है उसीका ग्रहण किया जाता है—शेषका उक्त पदके आश्रयसे परिवर्जन (गौणी-करण) हो जाता है।····

अध्यापक वीरभद्रजीकी व्याख्या अभी चल ही रही थी कि इतनेमें घंटा बज गया और वे दूसरी कक्षामें जानेके लिये उठने लगे। यह देखकर कक्षाके सब विद्यार्थी एक दम खड़े हो गये और अध्यापकजीको अभिवादन करके कहने लगे—'आज तो आपने तत्त्वज्ञानकी बड़ी बड़ी गंभीर तथा सूक्ष्म बातोंको ऐसी सरलता और सुगम-रीतिसे बातकी बातमें समझा दिया है कि हम उन्हें जीवनभर भी नहीं भूल सकते। इस उपकारके लिये हम आपके आजन्म ऋणी रहेंगे।'

———

[३]

बड़ा दानी कौन ?

एक दिन अध्यापक वीरभद्रने कक्षामें पहुँचकर विद्यार्थियोंसे पूछा—'बड़े-छोटेका जो तत्त्व तुम्हें कई दिनसे समझाया जा रहा है उसे तुम खूब अच्छी तरह समझ गये हो या कि नहीं ?' विद्यार्थियोंने कहा—'हाँ, हम खूब अच्छी तरह समझ गये हैं।'

'अच्छा, यदि खूब अच्छी तरह समझ गये हो तो आज मेरे कुछ प्रश्नोंका उत्तर दो, और उत्तर देनेमें जो विद्यार्थी सबसे अधिक चतुर हो वह मेरे सामने आजाय, शेष विद्यार्थी उत्तर देनेमें उसकी मदद कर सकते हैं और चाहें तो पुस्तक खोलकर उसकी भी मदद ले सकते हैं,' अध्यापक महोदयने कहा।

इसपर मोहन नामका एक विद्यार्थी, जो कक्षामें सबसे अधिक होशियार था, सामने आगया और तब अध्यापकजीने उससे पूछा—

'बतलाओ, बड़ा दानी कौन है ?'

विद्यार्थी—जो लाखों रुपयोंका दान करे वह बड़ा दानी है।

अध्यापक—तुम्हारे इस उत्तरसे तीन बातें फलित होती हैं—एक तो यह कि दो चार हजार रुपयेका या लाख रुपयेसे कमका दान करनेवाला बड़ा दानी नहीं; दूसरी यह कि लाखोंकी रकमका दान करनेवालोंमें जो समान रकमके दानी हैं वे परस्परमें समान हैं—उनमें कोई बड़ा-छोटा नहीं; और तीसरी बात यह

कि रुपयोंका दान करनेवाला ही बड़ा दानी है, दूसरी किसी चीज़का दान करनेवाला बड़ा दानी नहीं।

विद्यार्थी—मेरा यह मतलब नहीं कि दूसरी किसी चीज़का दान करनेवाला बड़ा दानी नहीं, यदि उस दूसरी चीज़की—जायदाद मकान वग़ैरहकी—मालियत उतने रुपयों जितनी है तो उसका दान करनेवाला भी उसी कोटिका बड़ा दानी है।

अध्यापक—जिस चीज़का मूल्य रुपयोंमें न आँका जा सके उसके विषयमें तुम क्या कहोगे ?

विद्यार्थी—ऐसी कौन चीज़ है, जिसका मूल्य रुपयोंमें न आँका जा सके ?

अध्यापक—निःस्वार्थ प्रेम, सेवा और अभयदानादि; अथवा क्रोधादि कषायोंका त्याग और दयाभावादि बहुतसी ऐसी चीज़ें हैं जिनका मूल्य रुपयोंमें नहीं आँका जा सकता। उदाहरणके लिये एक मनुष्य नदीमें डूब रहा है, यह देख कर तटपर खड़ा हुआ एक नौजवान जिसका पहलेसे उस डूबने वालेके साथ कोई सम्बन्ध तथा परिचय नहीं है, उसके दुःखसे व्याकुल हो उठता है, दयाका स्रोत उसके हृदयमें फूट पड़ता है, मानवीय कर्तव्य उसे आ धर दबाता है और वह अपने प्राणोंकी कोई पर्वाह न करता हुआ—जान जोखोंमें डालकर भी—एकदम चढ़ी हुई नदीमें कूद पड़ता है और उस डूबनेवाले मनुष्यका उद्धार करके उसे तटपर ले आता है। उसके इस दयाभाव-परिणत आत्मत्याग और उसकी इस सेवाका कोई मूल्य नहीं और यह अमूल्यता उस समय और भी बढ़ जाती है जब यह मालूम होता है कि वह उद्धार पाया हुआ मनुष्य एक राजाका इकलौता पुत्र है और उद्धार करने वाले साधारण ग़रीब आदमीने बदलेमें कृतज्ञता-रूप-

से पेश किये गये भारी पुरस्कारको भी लेनेमें अपनी असमर्थता व्यक्त की है। ऐसा दयादानी आत्मत्यागी मनुष्य लाखों रुपयोंका दान करनेवाले दानियोंसे कम बड़ा नहीं है, वह उससे भी बड़ा है जो पुरस्कारमें आधे राज्यकी घोषणाको पाकर अपनी जानपर खेला हो और ऐसे ही किसी डूबते हुए राजकुमारका उद्धार करनेमें समर्थ होकर जिसने आधा राज्य प्राप्त किया हो। इसी तरह सैनिकों-द्वारा जब लूट-खसोटके साथ क़त्लेआम हो रहा हो तब एक राजाकी अभय-घोषणाका उस समय रुपयोंमें कोई मूल्य नहीं आँका जा सकता—वह लाखों-करोड़ों और अरबों-खर्बों रुपयोंके दानसे भी अधिक होती है, और इस लिये एक भी रुपया दान न करके ऐसी अभय-घोषणा-द्वारा सर्वत्र अमन और और शान्ति स्थापित करनेवालेको छोटा दानी नहीं कह सकते। ऐसी ही स्थिति निःस्वार्थ-भावसे देश तथा समाज-सेवाके कार्योंमें दिन-रात रत रहनेवाले और उसीमें अपना सर्वस्व होम देनेवाले छोटी पूँजीके व्यक्तियोंकी है। उन्हें भी छोटा दानी नहीं कहा जा सकता।

अभी अध्यापक वीरभद्रजीकी व्याख्या चल रही थी और वे यह स्पष्ट करके बतला देना चाहते थे कि 'क्रोधादि कषायोंके सम्यक् त्यागी एक पैसेका भी दान न करते हुए कितने अधिक बड़े दानी होते हैं' कि इतनेमें उन्हें विद्यार्थीके चेहरेपर यह दीख पड़ा कि 'उसे बड़े दानीकी अपनी सदोष परिभाषापर और अपने इस कथनपर कि उसने बड़े-छोटेके तत्त्वको खूब अच्छी तरहसे समझ लिया है कुछ संकोच तथा खेद होरहाहै,' और इस लिये उन्होंने अपनी व्याख्याका रुख़ बदलते हुए कहा—

'अच्छा, अभी इस गंभीर और जटिल विषयको हम यहीं

रहने देते हैं—फिर किसी अवकाशके समय इसकी स्वतन्त्र-रूपसे व्याख्या करेंगे— और इस समय तुम्हारी समान मालियतके दान-द्रव्यकी बातको ही लेते हैं। एक दानी सेनाके लिये दो लाख रुपयेका मांस दान करता है, दूसरा आक्रमणके लिये उद्यत सेनाके वास्ते दो लाख रुपयेके नये हथियार दान करता है, तीसरा अपने ही आक्रमणमें घायल हुए सैनिकोंकी मर्हम-पट्टीके लिये दो लाख रुपयेकी दवा-दारूका सामान दान करता है और चौथा बंगालके अकालपीड़ितों एवं अन्नाभावके कारण भूखसे तड़प-तड़पकर मरनेवाले निरपराध प्राणियोंकी प्राणरक्षा-के लिये दो लाख रुपयेका अन्न दान करता है। बतलाओ इन चारोंमें बड़ा दानी कौन है? अथवा सबके दान-द्रव्यकी मालियत दो लाख रुपये समान होनेसे सब बराबरके दानी हैं—उनमें कोई विशेष नहीं, बड़े-छोटेका कोई भेद नहीं है?'

यह सुनकर विद्यार्थी कुछ भौंचकसा रह गया और उसे शीघ्र ही यह समझ नहीं पड़ा कि क्या उत्तर दूँ, और इस लिये वह उत्तरकी खोजमें मन-ही-मन कुछ सोचने लगा—दूसरे विद्यार्थी भी सहसा उसकी कोई मदद न कर सके—कि इतनेमें अध्यापकजी बोल उठे—

'तुम तो बड़ी सोचमें पड़ गये हो! क्या तुम्हें दानका स्वरूप और जिन कारणोंसे दानमें विशेषता आती है—अधिकाधिक फलकी निष्पत्ति होती है—उनका स्मरण नहीं है? और क्या तुम नहीं समझते कि जिस दानका फल बड़ा होता है वह दान बड़ा है और जो बड़े दानका दाता है वह बड़ा दानी है? तुमने तत्त्वार्थसूत्रके सातवें अध्याय और उसकी टीकामें पढ़ा है—स्व-परके अनुग्रह-उपकारके लिये जो अपनी धनादिक किसी

वस्तुका त्याग किया जाता है उसे 'दान' कहते हैं और दानमें विधि, द्रव्य, दाता और पात्रके विशेषसे विशेषता आती है—दानके तरीके, दानमें दी जानेवाली वस्तु, दाताके परिणाम और पानेवालेमें गुण-संयोगके भेदसे दानके फलमें कमी-बेशी होती है*; तब इस तात्विक दृष्टिको लेकर तुम क्यों नहीं बतलाते कि इन चारोंमें दान-द्रव्यकी समानता होते हुए भी कौन बड़ा है ?'

अध्यापकजीके इन प्रेरणात्मक शब्दोंको सुनकर विद्यार्थी-को होश आ गया, उसकी स्मृति काम करने लगी और इस लिये वह एक दम बोल पड़ा—

'इन चारोंमें बड़ा दानी वह है जिसने बेबसीकी हालतमें पड़े हुए बंगालके अकालपीड़ितोंको दो लाख रुपयेका अन्न दान किया है।'

अध्यापक—वह बड़ा दानी कैसे है ? जरा समझाकर बतलाओ। और खासकर इस बातको स्पष्ट करके दिखलाओ कि वह घायल सैनिकोंके लिये महमपट्टीका सामान दान करने वाले दानीसे भी बड़ा दानी क्योंकर है ?

विद्यार्थी—मांसकी उत्पत्ति प्रायः जीवघातसे होती है। जो मांसका दान करता है वह दूसरे निरपराध जीवोंके घातमें सहायक होता है और इस लिये मानवतासे गिर कर हिंसात्मक अपराधका भागी बनता है, जिससे उसका अपना उपकार न हो कर अपकार होता है। और जिन्हें मांसभोजन कराया जाता है वे भी उस जीवघातके अनुमोदक तथा प्रकारान्तरसे सहायक

---

* अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥३८॥
विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेषः ॥३९॥ त० सू०

होकर अपराधके भागी बनते हैं। साथ ही, मांस-भोजनसे उनके हृदयमें निर्दयता-कठोरता-स्वार्थपरतादि-मूलक तामसी भाव उत्पन्न होता है, जो आत्मविकासमें बाधक होकर उन्हें पतनकी ओर ले जाता है, और इस लिये मांस-दानसे मांसभोजीका भी वास्तविक उपकार नहीं होता—खासकर ऐसी हालतमें जबकि अन्नादिक दूसरे निर्दोष एवं सात्विक भोजनोंसे पेट भले प्रकार भरा जा सकता है और उससे शारीरिक बल एवं बौद्धिक शक्तिमें भी कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। अतः ऐसे दानका पारमार्थिक अथवा आत्मोपकार-साधनकी दृष्टिसे कोई अच्छा फल नहीं कहा जा सकता—भले ही उसके करनेवालेको लोकमें स्वार्थी राजा-द्वारा किसी ऊपरी पद या मन्सबकी प्राप्ति हो जाय। जब पारमार्थिक अथवा आत्मोपकारकी दृष्टिसे ऐसे दानका कोई बड़ा फल नहीं होता तो ऐसा दान देनेवाला बड़ा दानी भी नहीं कहा जा सकता।

हथियार हिंसाके उपकरण होनेसे उनका दान करनेवाला हिंसामें—परपीड़ामें—सहायक तथा उसका अनुमोदक होता है और जिसे दान दिया जाता है उसे उनके कारण हिंसामें प्रोत्साहन मिलता है और वे प्रायः दूसरोंके घातमें ही काम आते हैं। इस तरह दाता और पात्र दोनों के ही लिये वे आत्महितका कोई साधन न होकर आत्महनन एवं पतनके ही कारण बनते हैं, और इस लिये हथियारोंका दान पारमार्थिक दृष्टिसे कोई महान् दान नहीं होता—आक्रमणात्मक-युद्धके सैनिकोंके लिये तो वह और भी सदोष ठहरता है; तब उसका दानी बड़ा दानी कैसे हो सकता है ?

घायल सैनिकोंकी मर्हम-पट्टीके लिये स्वेच्छासे दवादारूका

दान देनेवाला पिछले दो दानियों—मांसदानी और हथियार दानीसे बड़ा जरूर है, परन्तु वह बंगालके घोर अकालसे पीड़ित प्राणियोंकी रक्षार्थ अन्नका दान करने वालेसे बड़ा नहीं है। क्योंकि अन्यके राष्ट्रपर आक्रमण करनेके लिये उद्यत सैनिक दूसरोंको घायल करने और स्वयं घायल होनेकी जिम्मेदारीको खुद अपने सिर पर उठाते हैं, अपराध करते हुए घायल होते हैं और अच्छे होनेपर आगे भी अपराध करनेकी—अनेक निरपराध प्राणियों तकका घात करनेकी—इच्छा रखते हैं, इस लिये वे उतने दयाके पात्र नहीं जितने कि बंगालके उक्त अकाल-पीड़ित दयाके पात्र हैं, जिनका अकालके बुलानेमें कोई हाथ नहीं, कोई अपराध नहीं और जिन पर अकाल लादा गया है अथवा किसी जिम्मेदार बड़े अधिकारीकी भारी लापर्वाही और गफलतसे लद गया है। ऐसी स्थितिमें मुझे तो बंगालके अकाल पीड़ितोंको दो लाख रुपयेका अन्न दान करनेवाला ही चारोंमें बड़ा दानी मालूम होता है।

अध्यापक—जिस दृष्टिको लेकर तुमने उक्त अन्नदानीको बड़ा दानी बतलाया है वह एक प्रकारसे ठीक है; परन्तु इस विषयमें कई विकल्प उत्पन्न होते अथवा सवाल पैदा होते हैं, उनमेंसे यहाँ पर दो विकल्पोंको ही रक्खा जाता है, जिनमेंसे पहला विकल्प अथवा सवाल इस प्रकार है—

'मानलो, बंगालके अकाल-पीड़ितोंके लिये दो दो लाख रुपयेका अन्न दान करने वाले चार सेठ है, जिनमेंसे १) एकने स्वेच्छासे दान नहीं दिया, वह दान देना ही नहीं चाहता था, उस पर किसी उच्च अधिकारीने भारी दबाव डाला और यह धमकी दी कि 'यदि तुम दो लाख रुपयेका अन्न दानमें नहीं दोगे

तो तुम्हारा अन्नका सब स्टाक जब्त कर लिया जायगा, तुम्हारे ऊपर इनकमटेक्स दुगुना-चौगुना कर दिया जायगा और भी अनेक कर बढ़ा दिये जावेंगे अथवा डिफेंस आफ इंडिया ऐक्टके अधीन तुम्हारा चालान करके तुम्हें जेलमें डाल दिया जायगा, तुम्हारी जायदाद जब्त करली जायगी और तुम जेलमें पड़े २ सड़ जाओगे।' और इस लिये उसने धमकीके भयसे तथा दबावसे मजबूर होकर वह दान दिया है। (२) दूसरेने इस इच्छा तथा आशाको लेकर दान दिया है कि उसके दानसे गवर्नर साहब या कोई दूसरे उच्चाधिकारी प्रसन्न होंगे और उस प्रसन्नताके उपलक्षमें उसे ऑनरेरी मजिस्ट्रेट या रायबहादुर-जैसा कोई पद प्रदान करेंगे अथवा उसके बढ़ते हुए करोंमें कमी होगी और अमुक केसमें उसके अनुकूल फैसला हो सकेगा। (३) तीसरेने कुछ ईर्षा भाव तथा व्यापारिक दृष्टिको लक्ष्यमें रख कर दान दिया है। उसके पड़ौसी अथवा प्रतिद्वंद्वीने ५० हजारका अन्न दान किया था, उसे नीचा दिखाने, उसकी प्रतिष्ठा कम करने और अपनी धाक तथा साख जमा कर कुछ व्यापारिक लाभ उठानेकी तरफ़ उसका प्रधान लक्ष्य रहा है। (४) चौथेका हृदय सचमुच अकाल-पीड़ितोंके दुखसे द्रवीभूत हुआ है और उसने मानवीय कर्तव्य समझकर स्वेच्छासे विना किसी लौकिक लाभको लक्ष्यमें रक्खे वह दान दिया है। बतलाओ इन चारोंमें बड़ा दानी कौन-सा सेठ है ? और जिस अन्नदानीको तुमने अभी बड़ा दानी बतलाया है वह यदि इनमेंसे पहले नम्बरका सेठ हो तब भी क्या वह उस दानीसे बड़ा दानी है जिसने स्वेच्छासे विना किसी दबावके घायल सैनिकोंकी बुरी हालतको देख कर उन पर रहम खाते हुए और उनके अपराधादिकी बातको भी ध्यानमें न लाते हुए उनकी मर्हमपट्टीके लिये दो लाख रुपयेका दान दिया है ?'

विद्यार्थी—इन चारोंमें बड़ा दानी चौथे नम्बरका सेठ है, जो दानकी ठीक स्पिरिटको लिये हुए है। बाकी तो दानके व्यापारी हैं। पहले नम्बरके सेठको तो वास्तवमें दानी ही न कहना चाहिये, उससे तो दो लाख रुपयेका अन्न एक प्रकारसे छीना गया है, वह तो दान-फलका अधिकारी भी नहीं है, और इस लिये घायल सैनिकोंकी मरहमपट्टीके लिये स्वेच्छासे दयाभावपूर्वक दो लाखका दान करने वालेसे वह बड़ा दानी कैसे हो सकता है ? नहीं हो सकता।

अध्यापक—मालूम होता है अब तुम विषयको ठीक समझ रहे हो। अच्छा, दूसरे विकल्पके रूपमें, अब इतना और जानलो कि—'चौथे नम्बरका सेठ करोड़ोंकी सम्पत्तिका धनी है, उसके यहाँ प्रतिदिन लाखों रुपयोंका व्यापार होता है और हर साल सब खर्च देकर उसे दस लाख रुपयेके करीबकी बचत रहती है। उसने दो लाख रुपयेके दानसे अपना एक भोजनालय खुलवा दिया है, भोजन वितरण करनेके लिये कुछ नौकर छोड़ दिये हैं और यह आर्डर जारी कर दिया है कि जो कोई भी भोजनके लिये आवे उसे भोजन दिया जावे; नतीजा यह हुआ कि उसके भोजनालयपर अधिकतर ऐसे सण्डे-मुसण्डे और गुण्डे लोगोंकी भीड़ लगी रहती है जो स्वयं मजदूरी करके अपना पेट भर सकते हैं—दयाके अथवा मुफ्त भोजन पानेके पात्र नहीं, जो धक्कामुक्की करके अधिकाँश गरीब भुखमरोंको भोजनशालाके द्वार तक भी पहुँचने नहीं देते और स्वयं खा-पीकर चले जाते हैं तथा कुछ भोजन साथ भी ले जाते हैं। और इस तरह जिन गरीबोंके वास्ते भोजनशाला खोली गई है उन्हें बहुत ही कम भोजन मिल पाता है। प्रत्युत इसके, धनीराम नामके एक पांचवें सेठ हैं, जो ३-४ लाख रुपयेकी सम्पत्तिके ही मालिक हैं। उनका भी हृदय बंगालके अकाल-पीड़ितोंको देख

कर वास्तवमें द्रवीभूत हुआ है, उन्होंने भी मानवीय कर्तव्य समझ कर स्वेच्छासे बिना किसी लौकिक लाभको लक्ष्यमें रक्खे दो लाखका दान दिया है और उससे अपनी एक भोजनशाला खुलवाई है। साथ ही, भोजनशालाकी ऐसी विधि व्यवस्था की है, जिससे वे भोजनपात्र गरीब भुखमरे ही भोजन पा सकें जिनको लक्ष्य करके भोजनशाला खोली गई है। उसने भोजनशालाका प्रबन्ध अपने दो योग्य पुत्रोंके सुपुर्द करदिया है, जिनकी सुव्यवस्थासे कोई मरडा-मुसण्डा अथवा अपात्र व्यक्ति भोजनशालाके अहातेके अन्दर घुसने भी नहीं पाता, जिसके जो योग्य है वही सात्विक भोजन उसे दिया जाता है और उन दीन-अनाथों तथा विधवा-अपाहजोंको उनके घरपर भी भोजन पहुँचाया जाता है जो लज्जाके मारे भोजनशालाके द्वार तक नहीं आ सकते और इसलिये जिन्हें भोजनके अभावमें घर पर ही पड़े पड़े मर जाना मंजूर है। अब बतलाओ इन दोनों सेठोंमें कौन बड़ा दानी है?—वही चौथे नम्बरवाला सेठ क्या बड़ा दानी है जिसे तुमने अभी बहुतोंकी तुलनामें बड़ा बतलाया है? अथवा पांचवें नम्बर का यह सेठ धनीराम बड़ा दानी है? कारण-सहित प्रकट करो।

विद्यार्थी उत्तरके लिये कुछ सोचने ही लगा था कि इतनेमें अध्यापकजी बोल पड़े—'इसमें तो सोचनेकी जरा भी बात नहीं है, यह स्पष्ट है कि चौथेनम्बर वाले सेठकी पोजीशन बड़ी है, उसकी माली हालत सेठ धनीरामसे बहुत बढ़ी चढ़ी है, फिर भी धनीरामने उसके बराबर ही दो लाखका दान दिया है, दीन-दुखियोंकी पुकारके मुकाबलेमें अधिक धन संचित कर रखना उसे अनुचित जँचा है और उसने थोड़ी सम्पत्तिमें ही सन्तोष धारण करके उसीसे अपना निर्वाह कर लेना इस विषम परिस्थितिमें उचित समझा है। अतः उसका दानद्रव्य समान होनेपर

भी उसका मूल्य अधिक है और उसके दानकी विधि-व्यवस्था-ने तथा पात्रोंके ठीक चुनावने उसका मूल्य और भी अधिक बढ़ा दिया है। वह ऐसी स्थितिमें यदि एक लाख नहीं किन्तु अर्धलाख भी दान करता तो भी उसका मूल्य उस चौथे नम्बर-वाले सेठके दानसे बढ़ा रहता; क्योंकि दानका मूल्य दानकी रकम अथवा दान-द्रव्यकी मालियत पर ही अवलम्बित नहीं रहता, उसके लिये दान-द्रव्यकी उपयोगिता, दाताके भाव तथा उसकी तत्कालीन स्थिति, दानकी विधि-व्यवस्था और जिसे दान दिया जाता है उसमें पात्रत्वादि गुणोंके संयोगकी भी आवश्य-कता होती है। विना इनके यों ही अधिक द्रव्य लुटा देनेसे बड़ा दान नहीं बनता। सेठ धनीरामके दानमें बड़ेपनकी इन सब बातोंका संयोग पाया जाता है, और इस लिये उसके दानका मूल्य करोड़पति सेठ नं० ४ के दानसे भी अधिक होनेके कारण वह उक्त सेठ साहबकी अपेक्षा भी बड़ा दानी है।'

मैं समझता हूँ अब तुम इस बातको भले प्रकार समझ गये होगे कि समान रकम अथवा समान मालियतके द्रव्यका दान करनेवाले सभी दानी समान नहीं होते—उनमें भी अनेक कारणोंसे छोटा-बड़ापन होता है; जैसा कि दो लाखके अनेक दानियोंके उदाहरणोंको सामने रख कर स्पष्ट किया जा चुका है। अतः समान मालियतके द्रव्यका दान करने वालोंको सवथा समान दानी समझना 'एकान्त' और उन्हें विभिन्न दृष्टियोंसे छोटा-बड़ा दानी समझना 'अनेकान्त' है। साथ ही, यह भी समझ गये होगे कि जिस चीजका मूल्य रुपयोंमें नहीं आँका जा सकता उसका दान करनेवाले कभी कभी बड़ी बड़ी रकमोंके दानियोंसे भी बड़े दानी होते हैं। और इस लिये बड़े दानीकी जो परिभाषा तुमने बांधी है, और जिसका एक अंश (परिभाषा-

से फलित होनेवाली तीन बातोंमेंसे पहली बात) अभी और विचारणीय है, वह ठीक नहीं है।

इस पर विद्यार्थी (जिसे पहले ही अपनी सदोष परिभाषा-पर खेद हो रहा था) नत मस्तक होकर बोला—'आपने जो कुछ कहा है वह सब ठीक है। आपके इस विवेचन, विकल्पोद्भावन और स्पष्टीकरणसे हम लोगोंका बहुतसा अज्ञान दूर हुआ है। हमने जो छोटे-बड़ेके तत्वको खूब अच्छी तरह समझ लेनेकी बात कही थी वह हमारी भूल थी। जान पड़ता है अभी इस विषयमें हमें बहुत कुछ सीखना-समझना बाकी है। लाइनोंके द्वारा आपने जो कुछ समझाया था वह इस विषयका 'सूत्र' था, अब आप उस सूत्रका व्यवहारशास्त्र हमारे सामने रख रहे हैं। इससे सूत्रके समझनेमें जो त्रुटि रही हुई है वह दूर होगी, कितनी ही उलझनें सुलझेंगी और चिरकालकी भूलें मिटेंगी। इस कृपा एवं ज्ञान-दानके लिये हम सब आपके बहुत ही ऋणी और कृतज्ञ हैं।'

मोहनके इस कथनका दूसरे विद्यार्थियोंने भी खड़े होकर समर्थन किया।

घंटेको बजे कई मिनट हो गये थे, दूसरे अध्यापकमहोदय भी कक्षामें आगये थे, इससे अध्यापक वीरभद्रजी शीघ्र ही दूसरी कक्षामें जानेके लिये बाध्य हुए।

---

[४]

बड़ा और छोटा दानी

उसी दिन अध्यापक वीरभद्रने दूसरी कक्षामें जाकर उस कक्षाके विद्यार्थियोंकी भी इस विषयमें जाँच करनी चाही कि वे बड़े और छोटेके तत्त्वको, जो कई दिनसे उन्हें समझाया जा रहा है, ठीक समझ गये हैं या कि नहीं अथवा कहाँ तक उसे हृदयंगम कर सके हैं, और इस लिये उन्होंने कक्षाके एक सबसे अधिक चतुर विद्यार्थीको पासमें बुलाकर पूछा—

एक मनुष्यने पाँच लाखका दान किया है और दूसरेने दस हजारका; बतलाओ, इन दोनोंमें बड़ा दानी कौन है ?

विद्यार्थीने झटसे उत्तर दिया—'जिसने पाँच लाखका दान किया है वह बड़ा दानी है।' इसपर अध्यापकमहोदयने एक गंभीर प्रश्न किया—

'क्या तुम पाँच लाखके दानीको छोटा दानी और दस हजारके दानीको बड़ा दानी कर सकते हो ?'

विद्यार्थी—हाँ, कर सकता हूँ।

अध्यापक—कैसे ? करके बतलाओ ?

विद्यार्थी—मुझे सुखानन्द नामके एक सेठका हाल मालूम है जिसने अभी दस लाखका दान दिया है, उससे आपका यह पाँच लाखका दानी छोटा दानी है। और एक ऐसे दातारको भी मैं जानता हूँ जिसने पाँच हजारका ही दान दिया है, उससे

आपका यह दस हज़ारका दानी बड़ा दानी है। इस तरह दस हज़ारका दानी एककी अपेक्षासे बड़ा दानी और दूसरेकी अपेक्षासे छोटा दानी है, तदनुसार पाँच लाखका दानी भी एककी अपेक्षासे बड़ा और दूसरेकी अपेक्षासे छोटा दानी है।

अध्यापक—हमारा मतलब यह नहीं जैसा कि तुम समझ गये हो, दूसरोंकी अपेक्षाका यहाँ कोई प्रयोजन नहीं। हमारा पूछनेका अभिप्राय सिर्फ इतना ही है कि क्या किसी तरह इन दोनों दानियोंमेंसे पाँच लाखका दानी दस हज़ारके दानीसे छोटा और दस हज़ारका दानी पाँच लाखके दानीसे बड़ा दानी हो सकता है ? और तुम उसे स्पष्ट करके बतला सकते हो ?

विद्यार्थी—यह कैसे होसकता है ? यह तो उसी तरह असंभव है जिस तरह पत्थरकी शिला अथवा लोहेका पानीपर तैरना।

अध्यापक—पत्थरकी शिलाको लकड़ीके स्लीपर या मोटे तख्तेपर फिट करके अगाध जलमें तिराया जा सकता है और लोहेकी लुटिया, नौका अथवा कनस्टर बनाकर उसे भी तिराया जा सकता है। जब युक्तिसे पत्थर और लोहा भी पानीपर तैर सकते हैं और इसलिये उनका पानीपर तैरना सर्वथा असंभव नहीं कहा जा सकता, तब क्या तुम युक्तिसे दस हज़ारके दानीको पाँचलाखके दानीसे बड़ा सिद्ध नहीं कर सकते ?

यह सुनकर विद्यार्थी कुछ गहरी सोचमें पड़ गया और उससे शीघ्र कुछ उत्तर न बन सका। इसपर अध्यापक महोदयने दूसरे विद्यार्थियोंसे पूछा—'क्या तुममेंसे कोई ऐसा कर सकता है ?' वे भी सोचते-से रह गये। और उनसे भी शीघ्र कुछ उत्तर न बन पड़ा। तब अध्यापकजी कुछ कड़ककर बोले—

'क्या तुम्हें तत्वार्थसूत्रके दान-प्रकरणका स्मरण नहीं है? क्या तुम्हें नहीं मालूम कि दानका क्या लक्षण है और उस लक्षणसे गिरकर दान दान नहीं रहता? क्या तुम्हें उन विशेषताओंका ध्यान नहीं है जिनसे दानके फलमें विशेषता–कमी-बेशी आती है और जिनके कारण दानका मूल्य कमो-बेश हो जाता अथवा छोटा-बड़ा बन जाता है? और क्या तुम नहीं समझते हो कि जिस दानका मूल्य बड़ा—फल बड़ा वह दान बड़ा है, उसका दानी बड़ा दानी है, और जिस दानका मूल्य कम—फल कम वह दान छोटा है, उसका दानी छोटा दानी है—दानद्रव्यकी संख्यापर ही दानका छोटा-बड़ापन निर्भर नहीं है?'

इन शब्दोंके आघातसे विद्यार्थि-हृदयके कुछ कपाट खुल गये, उसकी स्मृति काम करने लगी और वह ज़रा चमककर कहने लगा—

'हाँ, तत्वार्थसूत्रके सातवें अध्यायमें दानका लक्षण दिया है और उन विशेषताओंका भी उल्लेख किया है जिनके कारण दानके फलमें विशेषता आती है और उस विशेषताकी दृष्टिसे दानमें भेद उत्पन्न होता है अर्थात् किसी दानको उत्तम-मध्यम-जघन्य अथवा बड़ा-छोटा आदि कहा जा सकता है। उसमें बतलाया है कि 'अनुग्रहके लिये—स्व-पर-उपकारके वास्ते—जो अपने धनादिकका त्याग किया जाता है उसे 'दान' कहते हैं और उस दानमें विधि, द्रव्य, दाता तथा पात्रके विशेषसे विशेषता आती है—दानके ढंग, दानमें दिये जानेवाले पदार्थ, दातारकी तत्कालीन स्थिति और उसके परिणाम तथा पानेवालेमें गुणसंयोगके भेदसे दानके फलमें कमी-बेशी होती है। ऐसी स्थितिमें यह ठीक है कि दानका छोटा-बड़ापन केवल दानद्रव्यकी संख्यापर निर्भर नहीं होता, उसके लिये दूसरी कितनी ही बातोंको

देखनेकी जरूरत होती है, जिन्हें ध्यानमें रखते हुए द्रव्यकी अधिक-संख्यावाले दानको छोटा और अल्प-संख्यावाले दानको खुशीसे बड़ा कहा जा सकता है। अतः अब आप कृपाकर अपने दोनों दानियोंका कुछ विशेष परिचय दीजिये, जिससे उनके छोटे-बड़ेपनके विषयमें कोई बात ठीक कही जा सके।

अध्यापक—हमें पाँच पाँच लाखके दानी चार सेठोंका हाल मालूम है जिनमेंसे (१) एक सेठ डालचन्द हैं, जिनके यहाँ लाखोंका व्यापार होता है और प्रतिदिन हजारों रुपये धर्मादाके जमा होते हैं, उसी धर्मादाकी रकममेंसे उन्होंने पाँच लाख रुपये एक सामाजिक विद्या-संस्थाको दान दिये हैं और उनके इस दानमें यह प्रधान-दृष्टि रही है कि उस समाजके प्रेमपात्र तथा विश्वासपात्र बनें और लोकमें प्रतिष्ठा तथा उदारताकी धाक जमाकर अपने व्यापारको उन्नत करें। (२) दूसरे सेठ ताराचन्द हैं, जिन्होंने ब्लैक-मार्केट द्वारा बहुत धन संचय किया है और जो सरकारके कोप-भाजन बने हुए थे—सरकार उनपर मुकदमा चलाना चाहती थी। उन्होंने एक उच्चाधिकारीके परामर्शसे पाँचलाख रुपये 'गांधी-मीमोरियल-फंड' को दान दिये हैं और इससे उनकी सारी आपत्ति टल गई है। (३) तीसरे सेठ रामानन्द हैं, जो एक बड़ी मिलके मालिक हैं जिसमें 'वनस्पति-घी' भी प्रचुर परिमाणमें तय्यार होता है। उन्होंने एक उच्चाधिकारीको गुप्तदानके रूपमें पाँच लाख रुपये इसलिये भेंट किये हैं कि वनस्पतिघीका चलन बन्द न किया जाय और न उसमें किसी रंगके मिलानेका आयोजन ही किया जाय। (४) चौथे सेठ विनोदीराम हैं, जिन्हें 'रायबहादुर' तथा 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' बननेकी प्रबल इच्छा थी। उन्होंने जिलाधीशसे (कलक्टर से)

मिलकर उन जिलाधीशके नामपर एक हस्पताल (चिकित्सालय) खोलनेके लिये पाँच लाखका दान किया है और वे जिलाधीशकी सिफारिश पर रायबहादुर तथा आनरेरीमजिस्ट्रेट बना दिये गये हैं।

इसी तरह हमें चार ऐसे दानी सज्जनोंका भी हाल मालूम है जिन्होंने दस दस हजारका ही दान किया है। उनमेंसे (१) एक तो हैं सेठ दयाचन्द, जिन्होंने नगरमें योग्य चिकित्सा तथा दवाईका कोई समुचित प्रबन्ध न देखकर और साधारण गरीब जनताको उनके अभावमें दुःखित एवं पीड़ित पाकर अपनी निजकी कमाईमेंसे दस हजार रुपये दानमें निकाले हैं और उस दानकी रकमसे एक धर्मार्थ शुद्ध औषधालय स्थापित किया है, जिसमें गरीब रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषापर विशेष ध्यान दिया जाता है और उन्हें दवाई मुफ्त दी जाती है। सेठ साहब औषधालयकी सुव्यवस्थापर पूरा ध्यान रखते हैं और अक्सर स्वयं भी सेवाके लिये औषधालयमें पहुँच जाया करते हैं। (२) दूसरे सेठ ज्ञानानन्द हैं, जिन्हें सम्यग्ज्ञान-वर्धक साधनोंके प्रचार और प्रसारमें बड़ा आनन्द आया करता है। उन्होंने अपनी गाढ़ी कमाईमेंसे दस हजार रुपये प्राचीन जैनसिद्धान्त-ग्रन्थोंके उद्धारार्थ प्रदान किये हैं और उस द्रव्यकी ऐसी सुव्यवस्था की है जिससे उत्तम सिद्धान्त-ग्रन्थ बराबर प्रकाशित होकर लोकका हित कर रहे हैं। (३) तीसरे सज्जन लाला विवेकचन्द हैं, जिन्हें अपने समाजके बेरोजगार (आजीविका-रहित) व्यक्तियोंको कष्टमें देखकर बड़ा कष्ट होता था और इस लिये उन्होंने उनके दुःख-मोचनार्थ अपनी शुद्ध कमाईमेंसे दस हजार रुपये दान किये हैं। इस द्रव्यसे बेरोजगारोंको उनके योग्य रोजगारमें लगाया जाता है—दुकानें खुलवाई जाती हैं, शिल्पके साधन जुटाये जाते हैं, नौकरियाँ

दिलवाई जाती हैं और जब तक आजोविकाका कोई समुचित प्रबन्ध नहीं बैठता तब तक उनके भोजनादिकमें कुछ सहायता भी पहुँचाई जाती है। इससे कितने ही कुटुम्बोंकी आकुलता मिटकर उन्हें अभयदान मिल रहा है। (४) चौथे सज्जन गवर्नमेंटके पेंशनर बाबू सेवाराम हैं, जिन्होंने गवर्नमेंटके साथ अपनी पेंशनका दस हजार नकदमें समझौता कर लिया हैं और उस सारी रकमको उन समाजसेवकोंकी भोजनव्यवस्थाके लिये दान कर दिया है जो निःस्वार्थभावसे समाजसेवाके लिये अपनेको अर्पित कर देना चाहते हैं परन्तु इतने साधन-सम्पन्न नहीं हैं कि उस दशामें भोजनादिकका खर्च स्वयं उठा सकें। इससे समाजमें निःस्वार्थ सेवकोंकी वृद्धि होगी और उससे कितना ही सेवा एवं लोकहितका कार्य सहज सम्पन्न हो सकेगा। बाबू सेवारामजीने स्वयं अपनेको भी समाजसेवाके लिये अर्पित कर दिया है और अपने दानद्रव्यके सदुपयोगकी व्यवस्थामें लगे हुए हैं।

अब बतलाओ दस-दस हजारके इन चारों दानियोंमेंसे क्या कोई दानी ऐसा है जिसे तुम पाँच-पाँच लाखके उक्त चारों दानियोंमेंसे किसीसे भी बड़ा कह सको? यदि है तो कौन-सा है और वह किससे बड़ा है?

विद्यार्थी—मुझे तो ये दस-दस हजारके चारों ही दानी उन पाँच-पाँच लाखके प्रत्येक दानीसे बड़े दानी मालूम होते हैं।

अध्यापक—कैसे? जरा समझाकर बतलाओ?

विद्यार्थी—पाँच लाखके प्रथम दानी सेठ डालचन्दने जो द्रव्य दान किया है वह उनका अपना द्रव्य नहीं है, वह वह द्रव्य है जो ग्राहकोंसे मुनाफेके अतिरिक्त धर्मादाके रूपमें लिया गया है, न कि वह द्रव्य जो अपने मुनाफेमेंसे दानके लिये निकाला गया हो। और इस लिये उसमें सैकड़ों व्यक्तियोंका दानद्रव्य शामिल

है। अतः दानके लक्षणानुसार सेठ डालचन्द उस द्रव्यके दानी नहीं कहे जा सकते—दानद्रव्यके व्यवस्थापक हो सकते है। व्यवस्थामें भी उनकी दृष्टि अपने व्यापारकी रही है और इसलिये उनके उस दानका कोई विशेष मूल्य नहीं है—वह दानके ठीक फलोंको नहीं फल सकता। पाँच लाखके दानी शेष तीन सेठ तो दानके व्यापारी मात्र हैं—दानकी कोई स्पिरिट, भावना और आत्मोपकार तथा परोपकारको लिये हुए अनुग्रहदृष्टि उनमें नहीं पाई जाती और इस लिये उनके दानको वास्तवमें दान कहना ही न चाहिये। सेठ ताराचन्दने तो ब्लैकमार्केट-द्वारा बहुतोंको सताकर कमाये हुए उस अन्यायद्रव्यका दान करके उसका बदला भी अपने ऊपर चलनेवाले एक मुकदमेको टलानेके रूपमें चुका लिया है और सेठ विनोदीरामने बदलेमें 'रायबहादुर' तथा 'ऑनरेरी मजिस्ट्रेट' के पद प्राप्त कर लिये हैं अतः पारमार्थिकदृष्टिसे उनके उस दानका कोई मूल्य नहीं है। प्रत्युत इसके, दस-दस हज़ारके उन चारों दानियोंके दान दानकी ठीक स्पिरिट, भावना तथा स्व-परकी अनुग्रहबुद्धि आदिको लिये हुए हैं और इस लिये दानके ठीक फलको फलनेवाले सम्यक् दान कहे जानेके योग्य हैं। इसीसे मैं उनके दानी सेठ दयाचन्द, सेठ ज्ञानानन्द, ला० विवेकचन्द और बाबू सेवारामजीको पाँच-पाँच लाखके दानी उन चारों सेठों डालचन्द, ताराचन्द, रामानन्द और विनोदीरामसे बड़े दानी समझता हूँ। इनके दानका फल हर हालतमें उन तथाकथित दानियोंके दान-फलसे बड़ा है और इस लिये उन दस-दस हजारके दानियोंमेंसे प्रत्येक दानी उन पाँच-पाँच लाखके दानियोंसे बड़ा दानी है।

यह सुनकर अध्यापक वीरभद्रजी अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए बोले—'परन्तु सेठ रामानन्दजीने तो दान देकर अपना

नाम भी नहीं चाहा, उन्होंने गुप्त दान दिया है और गुप्त दानका महत्व अधिक कहा जाता है, तुमने उन्हें छोटा दानी कैसे कह दिया? ज़रा उनके विषयको भी कुछ स्पष्ट करके बतलाओ।

विद्यार्थी—सेठ रामानन्दका दान तो वास्तवमें कोई दान ही नहीं है—उसपर दानका कोई लक्षण घटित नहीं होता और इस लिये वह दानकी कोटिमें ही नहीं आता—गुप्तदान कैसा? वह तो स्पष्ट रिश्वत अथवा घूस है, जो एक उच्चाधिकारीको लोभमें डालकर उसके अधिकारोंका दुरुपयोग कराने और अपना बहुत बड़ा लौकिक स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये दी गई है और उस स्वार्थसिद्धिकी उत्कट भावनामें इस बातको बिल्कुल ही भुला दिया गया है कि वनस्पतिघीके प्रचारसे लोकमें कितनी हानि हो रही है—जनताका स्वास्थ्य कितना गिर गया तथा गिरता जाता है और वह नित्य-नई कितनी व कितने प्रकारकी बीमारियोंकी शिकार होती जाती है, जिन सबके कारण उसका जीवन भार-रूप हो रहा है। उस सेठने सबके दुख-कष्टोंकी ओरसे अपनी आँखें बन्द करली हैं—उसकी तरफसे बूढ़ा मरो चाहे जवान उसे अपनी हत्यासे काम! फिर दानके अंगस्वरूप किसीके अनुग्रह-उपकारकी बात तो उसके पास कहाँ फटक सकती है? वह तो उससे कोसों दूर है। महात्मा गान्धी-जैसे सन्तपुरुष वनस्पतिघीके विरोधमें जो कुछ कह गये हैं उसे भी उसने ठुकरा दिया है और उस अधिकारीको भी ठुकरानेके लिये राज़ी कर लिया है जो बात-बातमें गांधीजीके अनुयायी होनेका दम भरा करता है और दूसरोंको भी गांधीजीके आदेशानुसार चलनेकी प्रेरणा किया करता है। ऐसा ढोंगी, दम्भी, बगुला-भगत उच्चाधिकारी जो तुच्छ लोभमें पड़कर अपने कर्तव्यसे च्युत, पथसे

भ्रष्ट और अपने अधिकारका दुरुपयोग करनेके लिये उतारू हो जाता है वह दानका पात्र भी नहीं है। इस तरह पारमार्थिक दृष्टिसे सेठ रामानन्दका दान कोई दान नहीं है। और न लोकमें ही ऐसे दानको दान कहा जाता है। यदि द्रव्यको अपनेसे पृथक् करके किसीको दे देने मात्रके कारण ही उसे दान कहा जाय तो वह सबसे निकृष्ट दान है, उसका उद्देश्य बुरा एवं लोकहितमें बाधक होनेसे वह भविष्यमें घोर दुःखों तथा आपदाओंके रूपमें फलेगा। और इस लिये पाँच-पाँच लाखके उक्त चारों दानियोंमेंसे सेठ रामानन्दको सबसे अधिक निकृष्ट, नीचे दर्जे-का तथा अधम दानी समझना चाहिये।

अध्यापक—शाबास! मालूम होता है अब तुम बड़े और छोटेके तत्त्वको बहुत कुछ समझ गये हो। हाँ, इतना और बतलाओ कि जिन चार दानियोंको तुमने पाँच-पाँच लाखके दानियोंसे बड़े दानी बतलाया है वे क्या दस-दस हजारकी समान रकमके दानसे परस्परमें समान दानी हैं, समान-फलके भोक्ता होंगे और उनमें कोई परस्परमें बड़ा-छोटा दानी नहीं है?

विद्यार्थी उत्तरकी खोजमें मन-ही-मन कुछ सोचने लगा, इतनेमें अध्यापकजी बोल उठे—'इसमें अधिक सोचनेकी बात नहीं, इतना तो स्पष्ट ही है कि जब अधिक द्रव्यके दानी भी अल्प द्रव्यके दानीसे छोटे होजाते हैं और दानद्रव्यकी संख्यापर ही दान तथा दानीका बड़ा-छोटापन निर्भर नहीं है तब समान द्रव्यके दानी परस्परमें समान और एक ही दर्जेके होंगे ऐसा कोई नियम नहीं हो सकता—वे समान भी हो सकते हैं और असमान भी। इस तरह उनमें भी बड़े-छोटेका भेद संभव है और वह भेद तभी स्पष्ट हो सकता है जब कि सारी परिस्थिति सामने

हो अर्थात् यह पूरी तौरसे मालूम हो कि दानके समय दाताकी कौटुम्बिक तथा आर्थिक आदि स्थिति कैसी थी, किन भावोंकी प्रेरणासे दान किया गया है, किस उद्देश्यको लेकर तथा किस विधि-व्यवस्थाके साथ दिया गया है और जिन्हें लक्ष्य करके दिया गया है वे सब पात्र हैं, कुपात्र हैं या अपात्र, अथवा उस दानकी कितनी उपयोगिता है। इन सबकी तर-तमतापर ही दान तथा उसके फलकी तर-तमता निर्भर है और उसीके आधारपर किसी प्रशस्त दानको प्रशस्ततर या प्रशस्ततम अथवा छोटा-बड़ा कहा जा सकता है। जिनके दानोंका विषय ही एक-दूसरेसे भिन्न होता है उनके दानी प्रायः समान फलके भोक्ता नहीं होते और न समान फलके अभोक्ता होनेसे ही उन्हें बड़ा-छोटा कहा जा सकता है। इस दृष्टिसे उक्त दस-दस हजारके चारों दानियोंमेंसे किसीके विषयमें भी यह कहना सहज नहीं है कि उनमें कौन बड़ा और कौन छोटा दानी है। चारोंके अलग-अलग दानका विषय बहुत उपयोगी है और उन सबकी अपने अपने दान-विषयमें पूरी दिलचस्पी पाई जाती है।'

अध्यापक वीरभद्रजीकी व्याख्या चल ही रही थी, कि इतने-में घंटा बज गया और वे यह कहते हुए उठ खड़े हुए कि—'दान और दानीके बड़े-छोटे-पनके विषयमें आज बहुत कुछ विवेचन दूसरी कक्षामें किया जा चुका है उसे तुम मोहनलाल विद्यार्थी-से मालूम कर लेना, उससे रही-सही कचाई दूर हो कर तुम्हारा इस विषयका ज्ञान और भी परिपुष्ट हो जयगा और तुम एकान्त मभिनिवेशके चक्करमें न पड़ सकोगे।' अध्यापकजीको उठते देखकर सब विद्यार्थी खड़े हो गये और बड़े विनीतभावसे कहने लगे—'आज आपने हमारा बहुत बड़ा अज्ञानभाव दूर किया है। अभी तक हम बड़े-छोटेके तत्त्वको पूरी तरहसे नहीं समझे

थे, लाइनोंद्वारा—सूत्ररूपमें ही कुछ थोड़ा-सा जान पाये थे, अब आपने व्यवहारशास्त्रको सामने रखकर हमें उसके ठीक मार्गपर लगाया है, जिससे अनेक भूलें दूर होंगी और कितनी ही उलझनें सुलझेंगी। इस भारी उपकारके लिये हम आपका आभार किन शब्दोंमें व्यक्त करें वह कुछ भी समझमें नहीं आता। हम आपके आगे सदा नतमस्तक रहेंगे।'

प्रथम पाठकी प्रश्नावली

१ क्या कोई लाइन (रेखा) सर्वथा छोटी या सर्वथा बड़ी हो सकती है ?

२ क्या स्वभावसे अथवा स्वतंत्ररूपसे कोई वस्तु बड़ी या छोटी होती है ? यदि होती है तो उसे स्पष्ट करके बतलाओ और नहीं होती तो वैसा माननेमें क्या दोष आता है ?

३ किसी लाइन अथवा वस्तुको छोटी या बड़ी कब और किस आधारपर कहा जाता है ?

४ क्या छोटेके अस्तित्व-विना किसीको बड़ा और बड़ेके अस्तित्व-विना किसीको छोटा कहा जा सकता है ? यदि कहा जा सकता है तो किस आधार पर और नहीं कहा जा सकता तो किस कारण ?

५ क्या छोटी चीज बड़ी और बड़ी चीज छोटी भी हो सकती है ? कैसे ?

६ क्या छोटापन और बड़ापन दोनों गुण किसी वस्तमें एक साथ और एक ही समयमें रह सकते हैं? समझाकर बतलाओ?

७ क्या एक ही चीजको छोटी और बड़ी दोनों कहनेमें कोई विरोध आता है? सकारण उत्तर दो।

८ क्या बड़ापन और छोटापनमें दिखाई पड़नेवाले विरोधकी तुलना पूर्वाऽपरविरोध और अन्धकार--प्रकाशके विरोधसे की जा सकती है? यदि की जासकती है तो कैसे?

९ छोटापन और बड़ापनको मापनेका मापदण्ड (गज़ कौनसा है और उसके द्वारा कैसे छोटापन तथा बड़ापन मापा जाता अथवा उसका निर्णयकिया जाता है?

१० (क) विरोधाभास किसे कहते हैं, उदाहरण-सहित बताओ?

(ख) तीन-इंची लाइनको पांच-इंची लाइनसे छोटी और पांच-इंची लाइनसे ही बड़ी बतलाना भी क्या विरोधाभास है?

११ दृष्टि और अपेक्षामें क्या कोई अन्तर है?

१२ जब किसी वस्तुमें छोटापन और बड़ापन दोनों गुण एक साथ मौजूद हैं तब उसे विना किसी अपेक्षाके छोटी या बड़ी कहनेमें क्या कोई दोष आता है? समझाकर बताओ।

१३ एकान्त और अनेकान्तमें क्या अन्तर अथवा भेद है?

१४ सम्यक्दृष्टि किसे कहते हैं?

१५ सम्यक्दृष्टि यदि किसी वस्तुको छोटी या बड़ी अथवा दोनों कहना चाहता है तो कैसे कहता है?

१६ किसका वचन-व्यवहार 'सच्चा' होता है और क्यों ?
१७ तीन-इंची लाइन क्या तीन-इंचकी लाइनसे छोटी भी होती है?
१८ तुम्हारी पुस्तकमें जो तीन-इंची लाइनें दी हैं वे सब क्या वास्तवमें तीन इंचकी हैं अथवा तीन-इंचके रूपमें कल्पित हैं ?
१६ कल्पित तीन-इंची लाइनें क्या वास्तविक तीन-इंची लाइनसे छोटी और परस्परमें छोटी-बड़ी नहीं हो सकतीं ? स्पष्ट करके बतलाओ ?
२० सीधी लाइनोंको छोड़कर गोल लाइनों (वृत्तों) के द्वारा छोटे-बड़ेके तत्त्वको समझाओ

द्वितीय पाठको प्रश्नावली

१ क्या तीन-इंची लाइनको विना घटाए-बढ़ाए और विना छूए ही छोटी-बड़ी किया जा सकता है ? करके बतलाओ ?
२ तीन-इंची लाइनको छोटी और बड़ी दोनों कहनेमें क्या कोई विरोध या असंगति आती है, समझाकर बतलाओ ?
३ तीनइंची लाइनमें छोटापन और बड़ापन दोनों गुण एक साथ मानकर यदि उसे एक वार पाँच-इंची लाइनसे छोटी और दूसरी वार पांच-इंची लाइनसे ही बड़ी बतलाई जाय तो क्या इस कथनमें कोई विरोध आएगा ? यदि आएगा तो कौनसा और कैसे ?
४ तीनइंची लाइनको एक विद्यार्थी 'छोटी ही है' और दूसरा विद्यार्थी 'बड़ी ही है' ऐसा बतलाता है। इन दोनोंके कथनों में किसका कथन ठीक है और क्यों ?
५ सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिमें क्या अन्तर है ?
६ एकान्त तथा कदाग्रहको कौन अपनाता है ? और किसके कथनमें सदा विरोध बना रहता है ? समझाकर बताओ ?
७ किसी वस्तुमें छोटापन तथा बड़ापनके दोनों एकान्तोंको यदि

स्वतंत्र रूपसे विना किसी अपेक्षाके अपनाया जाय तो इसमें क्या कोई दोष आता है ? स्पष्ट करके बतलाओ ?

८ 'ही' और 'भी' के प्रयोगोंमें क्या अन्तर है ? उदाहरण सहित प्रकट करो ?

९ अपेक्षाको साथमें लिये हुए 'ही' का प्रयोग क्या सदोष और विना अपेक्षाके 'भी' का प्रयोग क्या निर्दोष है ? स्पष्ट करो ?

१० किसी वाक्यके साथमें 'स्यात्' 'कथञ्चित्' और 'सर्वथा' जैसे शब्दका प्रयोग होनेसे क्या बोध होता है ?

११ स्याद्वादी जिनदासजीने मोहन लड़केको देखकर और उसके विषयमें कुछ पूछ-ताछ करके जो किसी अपेक्षादिका व्यक्तिकरण किये विना ही यह कहा था कि 'यह तो छोटा है' यह कहना उनका क्या सदोष है अथवा निर्दोष है ? और कैसे ?

१२ 'स्यात्' जैसे पदके प्रयोगको साथमें न लेते हुए भी क्या कोई कथन 'स्यात्' पदसे अनुशासित हो सकता है ? उदाहरण देकर तथा समझाकर बतलाओ ?

१३ 'मुख्य' और 'गौण' किसे कहते हैं ? और इनको व्यवस्थासे वचन-व्यवहारकी व्यवस्था ठीक कैसे बनती है ?

१४ लाइनोंको छोड़कर दूसरी वस्तुओंके द्वारा छोटे-बड़ेके तत्त्वको समझाओ ?

(क) दो गिलास जिनके मुँह चार चार इंचीके और पैंदी दो दो इंचीकी हैं क्या परस्परमें छोटे-बड़े हो सकते हैं ? कैसे ?

(ख) चचासे भतीजा क्या बड़ा हो सकता है ? हो तो कैसे ?

(ग) अस्सी वषका बूढ़ा एक तीस वर्षके नौजवानसे किस तरह छोटा हो सकता है ?

तृतीय पाठकी प्रश्नावली

१ यदि 'बड़ा दानी' उसे कहा जाय 'जो लाखों रुपयोंका दान

करे' तो इससे कौनसी बातें फलित होती है ?

२ कुछ ऐसी चीजें उदाहरणके साथ स्पष्ट करके बतलाओ जिनका मूल्य रुपयोंमें नहीं आँका जा सकता ?

३ क्या कोई एक पैसेका भी दान न करके लाखों-करोड़ोंका दा[illegible]ण दे[illegible]

४ स[illegible]

दान दिया, दोनोंमें बड़ा दानी कौन और कैसे ?

११ एक छोटी पूंजीका व्यक्ति जो निःस्वार्थ-भावसे देश तथा समाज सेवाके कार्योंमें दिन-रात रत रहता है और उन्हींमें जिसने अपना सर्वस्व होम दिया है वह क्या लाखों-करोड़ों रुपयोंका दान करनेवालोंसे छोटा दानी है ?

चतुर्थ पाठकी प्रश्नावली

१ क्या दस हजारका कोई दानी पाँच लाखके किसी दानीसे बड़ा हो सकता है ? उदाहरण-द्वारा स्पष्ट करके बतलाओ ?

२ पाँच पाँच लाख रुपयोंका समान दान करनेवाले चार सेठों डालचन्द, ताराचन्द, रामानन्द और विनोदीराममें कौन बड़ा और कौन छोटा दानी है ?

३ गुप्त दान करके अपना नाम भी न चाहनेवाले सेठ रामानन्द को बड़ा दानी माननेमें क्या कोई आपत्ति है ?

४ किसी दानीका छोटा या बड़ा होना किस बातपर निर्भर है ?

५ सेठ दयाचन्द, सेठ ज्ञानानन्द, लाला विवेकचन्द और बाबू सेवाराममेंसे किसीके भी दानकी तुलनामें सेठ डालचन्द, ताराचन्द और विनोदीरामके दानोंका क्या मूल्य है ?

६ (क) दस दस हजारकी समान रकमके दानी सेठ दयाचन्द, ज्ञानानन्द, विवेकचन्द और सेवारामजी क्या एक ही कोटि-के समान दानी हैं—उनमें कोई बड़ा-छोटा नहीं है ? और (ख) क्या वे दानके समान फलको प्राप्त होंगे ?

७ पुस्तकसे भिन्न दूसरे कुछ ऐसे उदाहरण उपस्थित करो जिनसे यह समझा जा सके कि दानीके बड़ा-छोटा होनेमें दान-द्रव्यकी संख्याका कोई विशेष मूल्य नहीं है ?